डॉ० अम्बेडकर द्वारा मनुस्मृति एवं आर्य (हिन्दू) साहित्य के विरोध के कारण और उनकी समीक्षा

डॉ. अम्बेडकर के समग्र वाङ्मय को पढ़ने के उपरान्त यह निष्कर्ष सामने आता है कि डॉ० अम्बेडकर आरम्भ में प्राचीन भारतीय साहित्य के शोधात्मक और समीक्षात्मक ध्येय को लेकर चले थे और वे प्राचीन समाजव्यवस्था की मौलिकता को, विशेषत: उस अवस्था में शूद्रों की वास्तविक स्थिति को पाठकों के समक्ष रखकर जातिवादी समाज में विचार-परिवर्तन करना चाहते थे। यह उनका पहला चरण था। फिर दूसरा चरण शुरू हुआ जिसमें अकस्मात् उनका ध्येय घोर विरोधी स्वर में परिवर्तित हो गया और वे उसी को अपना पक्ष मानकर केवल खण्डनात्मक व प्रतिशोधात्मक लेखन करने लगे। इसके कुछ मनोवैज्ञानिक एवं परिस्थितिजन्य कारण रहे हैं।

डॉ० भीमराव रामजी अम्बेडकर का जब जन्म हुआ, उस समय पौराणिक हिन्दू समुदाय जन्मना जाति-पांति, ऊंच-नीच, छूआछूत, सामाजिक भेदभाव जैसी कुप्रथाओं से ग्रस्त था। उसके कारण उन्होंने अपने जीवन में अनेक भेदभावपूर्ण असमानताओं, अन्यायों, उपेक्षाओं और यातनाओं को भोगा। यह स्वाभाविक ही है कि प्रत्येक जागरूक एवं स्वाभिमानी व्यक्ति के मन में ऐसे व्यवहार के प्रति आक्रोश जन्म लेता है। डॉ० अम्बेडकर के मन में ऐसे व्यवहार की प्रतिक्रिया में आक्रोश का एक स्थायी भाव बन गया था। उन्होंने जिन-जिन कारणों को इस भेदभावपूर्ण व्यवस्था का उत्तरदायी समझा, उनके प्रति उनका आक्रोश विभिन्न रूपों में प्रकट हुआ। उनका यह आक्रोश जीवनभर बना रहा और अवसर पाकर प्रकट होता रहा। दलितों के साथ गत दो-तीन सहस्राब्दियों में जो व्यवहार हुआ वह सर्वथा अमानवीय और निन्दनीय था। अब उसमें कठोरता से सुधार किया जाना चाहिए। किन्तु विगत व्यवहार के प्रति प्रतिशोधात्मक भावना रखकर वैसा व्यवहार करना भी उतना ही अनुचित है। प्रतिशोधात्मक भावना से सुधार की आशा रखना व्यर्थ है जबकि वर्गविद्वेष की आशंका का

पनपना निश्चित है। यदि यह स्थिति बनेगी तो वह निश्चित रूप से समाज और राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध होगी। अतीत के व्यवहार का प्रतिशोध लेना वर्तमान में कभी संभव नहीं हो सकता। हाँ, स्थिति में सुधार अवश्य संभव हो सकता है।

डॉ० अम्बेडकर जैसे सुशिक्षित लेखक भी आक्रोश के इतने वशीभूत हो गये कि वे प्रतिशोधात्मक प्रतिक्रिया से बच नहीं सके। आगे उन्हीं कारणों पर विचार किया जा रहा है।

१. सत्य के शोध का दावा : केवल दिखावा

डॉ० अम्बेडकर के आरम्भिक लेखन में यह दावा प्राप्त होता है कि वे प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन-मनन-अन्वेषण करके उसमें वर्णित समाजव्यवस्था के मौलिक स्वरूप को और शूद्रों की प्राचीन स्थिति को पाठकों के सामने रखकर यह बताना चाहते हैं कि वर्तमान में जो व्यवस्था और व्यवहार प्रचलित है यह एक विकृत रूप है और उसको सुधारा जाना जरूरी है। डॉ० अम्बेडकर अपने ध्येय को इस प्रकार स्पष्ट करते हैं—

(क) "मैंने एक इतिहासवेत्ता की हैसियत से अनुसन्धान किया है। इतिहासवेत्ता धार्मिक पुस्तकों और अन्य पुस्तकों में कोई भेद नहीं मानते। **उनका काम तो सत्य की खोज है।**"

"इतिहासवेत्ता का तरीका दूसरा है। इतिहासवेत्ता को सही, निष्पक्ष, निष्काम, बेधड़क और **सत्य का प्रेमी होना चाहिए।** उसको निष्पक्षभाव से छोटी से छोटी चीज की जांच करनी चाहिए। अपने अनुसन्धान में **मैंने अपने को निष्पक्ष रखा है।**"(शूद्रों की खोज, प्राक्क्थन, पृ० ५-६, समता प्रकाशन, नागपुर)

(ख) "इस आलेख का प्राथमिक उद्देश्य यह बताना है कि अनुसन्धान का सही मार्ग कौन-सा है, **ताकि एक सत्य उजागर हो।** हमें इस विषय के विश्लेषण में **पक्षपातरहित रहना है। भावनाओं के लिए कोई स्थान नहीं होना चाहिए,** बल्कि इस विषय पर वैज्ञानिक और **निष्पक्ष रूप से विचार किया जाए।**" (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड १, भारत में जातिप्रथा, पृ० ३६)

समीक्षा—सत्य के अनुसन्धान का यह दावा कुछ सीमा तक 'हू वर द शूद्राज्?' (शूद्रों की खोज) नामक पुस्तक में सही माना जा सकता है। उसके बाद रचे गये साहित्य में यह दावा कहीं सत्य नहीं दिखायी पड़ता। पाठक देख रहे हैं कि डॉ० अम्बेडकर का प्रायः सारा लेखन भावनात्मक विरोध पर टिका हुआ है। वह भी निष्पक्ष न होकर एकपक्षीय है। उसमें 'विरोध के लिए विरोध' का लक्ष्य स्पष्ट झलकता है। डॉ० साहब सत्य-अनुसन्धान और निष्पक्ष विचार की प्रतिज्ञा को नहीं निभा सके। सत्य-अनुसन्धान का लक्ष्य राह में ही कहीं भटक गया? इसकी आड़ में उन्होंने केवल विरोध ही विरोध किया है। यह दावा केवल दिखावा बन कर रह गया है।

२. दलित राजनीति के लिए मनु और मनुस्मृति का अन्धविरोध

ऐसा प्रतीत होता है कि डॉ० अम्बेडकर के आक्रोशपूर्ण मानस को केवल शोधात्मक समालोचना से सन्तोष नहीं हुआ। उन्होंने स्वयं को दलितों के संरक्षक और सामाजिक नेता के रूप में स्थापित करना आरम्भ किया। तब वे शोधात्मक समीक्षा को छोड़कर विरोधात्मक आलोचना पर उतर आये। इस दूसरे स्तर पर भी वे वैदिक साहित्य तथा वैदिक वर्णव्यवस्था को अपेक्षाकृत उपयोगी एवं तर्कसम्मत मानते रहे। जातिवाद और उसके उतरदायी घटकों का, विशेषतः मनु और मनुस्मृति का, उन्होंने एकपक्षीय विरोध करना आरम्भ कर दिया। ब्राह्मणवाद पर उन्होंने तीखे प्रहार करने शुरू किये और ब्राह्मणवाद को ही जातिवाद का जनक एवं उत्तरदायी माना। मनुस्मृति को डॉ. अम्बेडकर ने केवल इसी पहलू से देखा और समझा था, इस कारण मनु और मनुस्मृति के अन्धविरोध को उन्होंने अपना लक्ष्य बना लिया। वे स्वयं अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

(क) ''मुझ पर मनु का भूत सवार है और मुझमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं उसे उतार सकूं। वह शैतान की तरह जिन्दा है।'' (डॉ० अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड १, पृ० २९)

(ख) ''भारत के विधिनिर्माता के रूप में यदि मनु का कोई अस्तित्व रहा है, तो वह एक ढीठ व्यक्ति रहा होगा।........यदि वह

क्रूर न होता, जिसने सारी प्रजा को दास बना डाला, तो ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती कि वह अपना आधिपत्य जमाने के लिए इतने अन्यायपूर्ण विधान की संरचना करता, जो उसकी 'व्यवस्था' में साफ झलकता है।'' (अम्बेडकर संपूर्ण वाङ्मय, खंड १, पृ० २९)

(ग) ''सामाजिक अधिकारों के सबन्ध में मनु के कानून से ज्यादा बदनाम और कोई विधि-संहिता नहीं है।'' (वही खंड १, पृ० ८५ तथा वही, खंड ६, पृ० ९३)

(घ) ''मनु एक ऐसा भाड़े का दलाल था, जो एक विशेष समुदाय में जन्मे लोगों के स्वार्थ की रक्षा करने के लिए रखा गया था।'' (वही, खंड ६, पृ० १००)

(ङ) ''नीत्शे की तुलना में मनु के महामानव का दर्शन अधिक नीच तथा भ्रष्ट है।'' (वही, खंड ६, पृ० १०१)

पाठक अब इन कथनों को ध्यान से पढें—

(च) ''एक बात मैं आप लोगों को बताना चाहता हूं कि मनु ने जाति के विधान का निर्माण नहीं किया और न वह ऐसा कर सकता था। जातिप्रथा मनु से पूर्व विद्यमान थी। वह तो उसका पोषक था।'' (वही, खंड १, पृ० २९)

(छ) ''कदाचित् मनु जाति के निर्माण के लिए जिम्मेदार न हो, परन्तु मनु ने वर्ण की पवित्रता का उपदेश दिया है।.......वर्णव्यवस्था जाति की जननी है और इस अर्थ में मनु जातिव्यवस्था का जनक न भी हो परन्तु उसके पूर्वज होने का उस पर निश्चित ही आरोप लागया जा सकता है।'' (वही, खंड ६, पृ० ४३)

(ज) ''तर्क में यह सिद्धान्त है कि ब्राह्मणों ने जाति-संरचना की।'' (वही, खंड १, पृ० २९)

(झ) ''जातिव्यवस्था का जनक होने के कारण विभिन्न जातियों की उत्पत्ति के लिए मनु को स्पष्टीकरण देना होगा।'' (वही, खंड ७, पृ० ५७)

(ञ) ''मनु ने जाति का सिद्धान्त निर्धारित किया है।'' (वही, खंड ७, पृ० २२८)

समीक्षा—उक्त वाक्यों में हृदय का सच फूट पड़ा है। वस्तुतः डॉ० **अम्बेडकर पर मनु का भूत सवार हो चुका था। भूत सवार होने**

पर मनुष्य की असामान्य मनःस्थिति, असंतुलित विचार, अनिश्चयात्मक समीक्षा और अस्थिर चित्त हो जाते हैं। उपर्युक्त उद्धरणों में तीन-तीन परस्पर-विरोध हैं और मनु के लिए अपशब्दों की बौछार है। कोई भी कथन निश्चयात्मक नहीं, जिसको प्रामाणिक माना जा सके। यह केवल अविचारित और अन्धविरोध मात्र है। विडम्बना देखिए एक ही मुंह से तीन-तीन बातें कही गयी हैं—१. मनु जातिनिर्माता नहीं, २. मनु जातिनिर्माता है, ३. जातिनिर्माता ब्राह्मण हैं।

प्रश्न यह है कि यदि मनु जातिनिर्माता नहीं हैं और ब्राह्मण जातिनिर्माता हैं तो मनु का अन्धविरोध और अपमान क्यों किया गया है? यह ऐतिहासिक तथ्य है कि सभी चौदह मनु क्षत्रिय थे, ब्राह्मण नहीं; अतः उन पर ब्राह्मण या ब्राह्मणवादी होने का मिथ्या आरोप कैसे लग सकता है? स्वायंभुव मनु एक चक्रवर्ती सम्राट् था, अतः किसी का 'भाड़े का दलाल' भी नहीं हो सकता। यदि यह कथन मनु सुमति भार्गव (१८५ ई० पूर्व) के लिए है तो उस बात को स्पष्ट करना चाहिए था। वह मनुस्मृति का रचयिता है ही नहीं। उसके कारण प्राचीन आदरणीय मनुपरम्परा का अपमान करना एक साहित्यिक अपराध है। पाठक देख सकते हैं कि उपर्युक्त वाक्यों में कितनी आक्रोशपूर्ण और प्रतिशोधात्मक भावना भरी है। यह किसी सत्यानुसन्धाता या साहित्यिक समीक्षक का लेखन-स्तर नहीं कहा जा सकता।

पूर्व अध्यायों के उद्धरणों में डॉ. अम्बेडकर ने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि वर्णव्यवस्था की रचना वेदों से हुई। मनु इसके निर्माता नहीं, केवल प्रसारक हैं। वेदों की वर्णव्यवस्था गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित है, जो बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है। वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था परस्परविरोधी हैं। मनु जातिव्यवस्था के निर्माता भी नहीं हैं। इस प्रकार मनु वर्णव्यवस्था और जातिव्यवस्था, दोनों के निर्माता के आरोप से मुक्त हो जाते हैं। वर्णव्यवस्था के पोषक होने के कारण उन पर यह भी आरोप नहीं बनता कि उन्होंने जन्मना जातिवाद का पोषण किया। यदि वर्णव्यवस्था बुद्धिमत्तापूर्ण है और घृणास्पद नहीं है, तो अव्यवस्था के समय में व्यवस्था का पोषण करके उन्होंने उत्तम कार्य ही किया है, अपराध नहीं किया। मनु

वैदिक धर्मावलम्बी होने से वेदों को परमप्रमाण मानते हैं। अपने धर्मग्रन्थों के आदेशों का पालन करते हुए उन्होंने उसकी अच्छी व्यवस्थाओं का प्रचार-प्रसार किया तो यह कोई दोष नहीं। सभी धर्मावलम्बी ऐसा करते हैं। बौद्ध बनने के बाद डॉ. अम्बेडकर ने भी बौद्ध विचारों का प्रचार-प्रसार किया है। यदि उनका यह कार्य उचित है, तो मनु का भी उचित था। इतनी स्वीकारोक्तियां होने के उपरान्त भी, आश्चर्य है, कि अपने ही कथनों के विरुद्ध जाकर डॉ. अम्बेडकर मनु को स्थान-स्थान पर जातिवाद का जिम्मेदार ठहरा कर उनकी निन्दा करते हैं। परवर्ती सामाजिक व्यवस्थाओं को मनु पर थोपकर उन्हें कटु वचन कहना कहां का न्याय है?

संविधान में पचास वर्षों में छियासी के लगभग संशोधन किये जा चुके हैं, जिनमें कुछ संविधान की मूल भावना के प्रतिकूल हैं, जैसे-अंग्रेजी की अवधि बढ़ाना, आरक्षण की अवधि बढ़ाना, मुसलमानों में गुजाराभत्ता की शर्त हटाना आदि। क्या इन परवर्ती संशोधनों का, और भावी संशोधनों का जिम्मेदार डॉ. अम्बेडकर को ठहराया जा सकता है? यदि नहीं, तो हजारों वर्ष परवर्ती विकृत-व्यवस्थाओं के लिए मनु को जिम्मेदार कैसे ठहराया जा सकता है?

जो यह कहा गया है कि 'अकेला मनु न तो जातिव्यवस्था को बना सकता था और न लागू कर सकता था।' यह तो स्वयं ही डॉ. अम्बेडकर ने मान लिया कि इन दोनों बातों के लिए मनु जिम्मेदार नहीं है। डॉ० अम्बेडकर के अनुसार, इसका अर्थ यह निकला कि पहले से ही समाज में वर्णव्यवस्था प्रचलित थी और समाज ने उसे स्वयं स्वीकृत किया हुआ था। वह लोगों के दिल-दिमाग में रची-बसी व्यवस्था थी, लोगों द्वारा उत्तम मानी हुई व्यवस्था थी, और सर्वस्वीकृत थी। मनु द्वारा थोपी नहीं गयी थी। जब समाज द्वारा स्वीकृत व्यवस्था थी, तो उसमें मनु का क्या दोष? आपने जनता द्वारा स्वीकृत वर्तमान व्यवस्था का पोषण किया है, मनु ने समाज द्वारा स्वीकृत अपने समय की वर्णव्यवस्था का पोषण किया था। इसमें दोष या अपने-अपने समय में दोनों के दोषी होने का अवसर ही कहां है?

डॉ. अम्बेडकर का एक कथन में (दूसरे एक में नहीं) मानना है कि वर्णव्यवस्था जातिव्यवस्था की जननी है, क्योंकि वर्णव्यवस्था

का मनु ने पोषण किया था, इसलिए मनु दोष के पात्र हैं। कितना अटपटा और लचीला तर्क है यह! ठीक जातिवाद जैसा! जैसे-किसी ने श्राद्ध नहीं किया तो वह पिछली छह पीढ़ियों के पूर्वजों सहित नरक में जायेगा, क्योंकि वे उसके जनक और पोषक थे। किसी ने श्राद्ध किया तो उसकी पिछली छह-पीढ़ियां तर जायेंगी, क्योंकि वे उसके जनक थे। ऐसे ही डॉ० साहब कहते हैं कि जातिव्यवस्था दोषपूर्ण है, अतः उसकी पूर्वव्यवस्था और उसके पोषक मनु भी दोषी हैं। आश्चर्य तो यह है कि एक कानूनवेत्ता एक कूननदाता के लिए ऐसे आरोपों का प्रयोग कर रहा है! संविधान में तो डॉ. अम्बेडकर ने ऐसा कानून नहीं बनाया कि किसी अपराधी को दण्ड देने के साथ-साथ उसके माता-पिता, दादा, परदादा आदि को भी अपराधी घोषित कर दिया जाये, इसलिए कि वे उसके 'जनक' हैं।

विगत को अपराधी घोषित करके उन्हें दण्डित और नष्ट-भ्रष्ट करने के इस सिद्धान्त को यदि कुछ राष्ट्रीय मामलों के लिए भी संविधान में लागू कर देते तो उससे उन राष्ट्रवादियों को सन्तोष होता, जिनकी यह विचारधारा रही है कि देश स्वतन्त्र होने के बाद उन लोगों को अपराधी घोषित करके दण्डित किया जाना चाहिए, जिन्होंने विगत में राष्ट्रदोह और स्वतन्त्रताप्राप्ति का विरोध किया था; जिन्होंने विदेशी शासकों का सहयोग किया, गुप्तचरी की, देशभक्तों को फांसी दिलवायी। वे लोग जमीन, पद-पैसे पाकर तब भी सम्पन्न-सुखी थे, आज भी हैं; और स्वतन्त्रतासेनानी और उनके परिजन दर-दर की ठोकरें खा रहे हैं! शायद ही ऐसी छूट किसी व्यवस्था-परिवर्तन ने दी हो! यदि वैसा होता तो गद्दारों को सबक मिलता और भावी राष्ट्रीय एकता-अखण्डता और स्वतन्त्रता के हित में होता।

वर्ण को जाति का जनक मानकर मनु को इस तरह दोषी ठहराया जा रहा है, जैसे मनु पहले ही जानते थे कि भविष्य में वर्ण से जाति का जन्म होगा, और इस आशा में वे जानबूझकर वर्ण का पोषण कर रहे थे। डॉ. अम्बेडकर ने वर्तमान संवैधानिक व्यवस्था का पोषण किया है। क्या वे जानते थे कि इससे भविष्य में कौन-सी व्यवस्था का जन्म होगा? बिल्कुल नहीं। इसी प्रकार मनु को भी नहीं पता था कि वर्णव्यवस्था का भविष्य में अच्छा या बुरा क्या रूप होगा।

डॉ. अम्बेडकर वर्तमान जाति-पांति रहित संविधान के लेखक एवं पोषक हैं। दुर्भाग्य से, सैकड़ों वर्षों के बाद यदि यह जातिवादी रूप ले जाये तो क्या डॉ. अम्बेडकर उस के जनक होने के जिम्मेदार बनेंगे? सभी कहेंगे-नहीं, वे तो जातिवाद के विरोधी हैं, उन्हें जनक क्यों कहा जाये? इसी प्रकार जातिव्यवस्था भी वर्णव्यवस्था की विरोधी व्यवस्था है। मनु को अपनी वर्णव्यवस्था की विरोधी जातिव्यवस्था का जनक कैसे कहा जा सकता है? इस प्रकार उन पर जातिव्यवस्था का जनक होने का आरोप सरासर गलत है। सच यह है कि बाद के समाज ने मनु की वर्णव्यवस्था को विकृत कर दिया और उसे जातिव्यवस्था में बदल दिया; अतः वही परवर्ती समाज इसका जनक भी है, दोषी भी।

३. दलित नेतृत्व और धर्मपरिवर्तन की आड़ में प्रतिशोधात्मक भावना

उनके विरोध का तीसरा चरण तब शुरू होता है जब उन्होंने स्वयं को सामाजिक नेता से राजनेता स्थापित करने की ओर कदम बढ़ाये। राजनेताओं की प्रायः यह नीति होती है कि अपने समर्थकों और अनुयायियों का संख्याबल बढ़ाने के लिए, उनकी प्रिय और हितकर बातों को बार-बार तथा तीव्र स्वर में उठाते हैं, और केवल उन्हीं एकपक्षीय बातों को कहते रहते हैं। डॉ० अम्बेडकर भी ऐसा ही कहने और करने लगे। उन्होंने साहित्यिक-ऐतिहासिक तथ्यों और तर्कों-प्रमाणों पर तटस्थ विचार करना छोड़ दिया।

यह चरण कई कदम आगे तब बढ़ा जब उन्होंने हिन्दू धर्म को त्यागकर बौद्धधर्म को ग्रहण करने का मन बनाया। जैसी कि पन्थों की रीति होती है, जब व्यक्ति अपने अभीष्ट पन्थ को स्थापित, सुदृढ़ एवं विकसित करना चाहता है और प्रतिपक्षी पन्थ को निर्बल देखना चाहता है तब वह अपने अभीष्ट पन्थ की प्रशंसा करता नहीं अघाता और प्रतिपक्षी पन्थ की निन्दा करते-करते संतुष्ट नहीं होता। उसी प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने भी वैदिक धर्म सहित हिन्दू धर्म पर उग्र प्रहार करने प्रारम्भ कर दिये जबकि बौद्ध पन्थ की महिमा का गुणगान शुरू कर दिया। तब उन्होंने एक धार्मिक प्रतिपक्षी के समान वेदों,

वैदिक साहित्य एवं वैदिक व्यवस्था सहित समस्त हिन्दू व्यवस्था का घोर एवं अविचारित विरोध करना अपना लक्ष्य बना लिया। इस चरण में उन्हें हिन्दुत्व और मनुस्मृति की प्रत्येक अच्छाई भी बुराई नजर आने लगी। वे एक-एक छिद्र को ढूंढ-ढूंढ कर ऐसे विरोध करने लगे जैसे केवल विरोध से ही उन्हें संतुष्टि मिलती हो। अब वे समीक्षक-आलोचक से कहीं दूर हटकर, केवल राजनीतिक और घोर धार्मिक विरोधी की भूमिका में आ गये। अपनी घोर धार्मिकविरोधी की भूमिका के बारे में वे स्वयं लिखते हैं। पाठक उन्हीं के शब्दों में पढ़ें—

(क) ''वेद बेकार की रचनाएं हैं। उन्हें पवित्र या सन्देह से परे बताने में कोई तुक नहीं है।'' (अम्बेडकर वाड्मय, खंड १३, पृ० १११)

(ख)''ऐसे वेदशास्त्रों के धर्म को निर्मूल करना अनिवार्य है।'' (अम्बेडकर वाड्मय, खंड १, पृ० ९५)

(ग) ''यदि आप जातिप्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों और शास्त्रों में डायनामाइट लगाना होगा। .....आपको श्रुति और स्मृति के धर्म को नष्ट करना ही चाहिए।'' (वही खंड १, पृ० ९९)

(घ) ''जहां तक नैतिकता का प्रश्न है, ऋग्वेद में प्रायः कुछ है ही नहीं, न ऋग्वेद नैतिकता का ही आदर्श प्रस्तुत करता है।'' (वही, खंड 8, पृ० ४७, ५१)

(ङ) ''यह (ऋग्वेद) आदिम जीवन की प्रतिच्छाया है, जिनमें जिज्ञासा आधिक है, भविष्य की कल्पना नहीं है। इनमें दुराचार अधिक, गुण मुट्ठी-भर हैं।'' (वही, खंड ८, पृ० ५१)

(च) ''अथर्ववेद मात्र जादू-टोनों, इन्द्रजाल और जड़ी-बूटियों की विद्या है। इसका चौथाई जादू-टोनों और इन्द्रजाल से युक्त है।'' (वही, खंड ८, पृ० ६०)

(छ) ''वेदों में ऐसा कुछ नहीं है जिससे आध्यात्मिक अथवा नैतिक उत्थान का मार्ग प्रशस्त होता हो।'' (वही, खंड ८, पृ० ६२)

(ज) ''ब्राह्मणों ने नियोजित अर्थ-व्यवस्था के उद्देश्य से आश्रम प्रणाली बनाई। यह इतनी बड़ी मूर्खता है कि उसका कारण और

उद्देश्य समझ पाना एक बहुत बड़ी पहेली है।'' (वही खंड ८, 'परिशिष्ट-१', पृ० २६५)

(झ) ''हिन्दूधर्म अपवित्रता के भय से व्याकुल है।......उसे धर्म कहना ही गलत है।'' (वही, खंड ६, पृ० १२०)

(ञ) ''इसीलिए डंके की चोट पर मैं यह कहा करता हूं कि ऐसे धर्म (हिन्दूधर्म) को निर्मूल करना अनिवार्य है और इस कार्य में कोई अधर्म नहीं है।'' (वही, खंड १, पृ० ९८)

(ट) ''मेरे जैसे व्यक्ति को जो **हिन्दूधर्म का इतना विरोधी** और अन्त्यज है।'' (वही, खंड १, पृ० २४)

यहां डॉ० अम्बेडकर के वे वचन और निष्कर्ष उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं जो उन्होंने वैदिक संस्कृति और ऋषि-मुनियों के बारे में लिखे हैं। वे इतने घृणित, असभ्य और कुत्सित हैं कि उन्हें सभ्य पाठकों के समक्ष नहीं रखा जा सकता।

समीक्षा- उपर्युक्त कथन और भाषा, उस लेखक की है जो अपने बारे में सत्य-अनुसन्धाता, पक्षपातरहित, निष्काम तथा तटस्थ इतिहासकार होने का दावा करता है। डॉ० अम्बेडकर को अपनी भावनाओं के आहत होने का कष्ट है किन्तु वैदिक और हिन्दू धर्मियों की आस्था पर क्रूरता से कुठाराघात करने का कोई दुःख नहीं है। स्वयं को वेद और वैदिक एवं हिन्दू धर्मविरोधी घोषित करने में जिसको गर्व का अनुभव हो रहा है, उस लेखक से पक्षपातरहित विवेचन की आशा करना मृगतृष्णा मात्र है।

वैदिक धर्म के विषय में जो सबसे अधिक आपत्तिपूर्ण, दुर्भावयुक्त और खतरनाक बात डॉ० अम्बेडकर ने कही है, वह है- ''यदि आप जातिप्रथा में दरार डालना चाहते हैं तो इसके लिए आपको हर हालत में वेदों और शास्त्रों में डायनामाइट लगाना होगा।'' (अम्बेडकर वाङ्मय, खंड १, पृ० ९९)। एक ओर वे मानते हैं कि वेदों में जातिव्यवस्था न होकर वर्णव्यवस्था है और वर्णव्यवस्था गुण-कर्म पर आधारित होने से बुद्धिमत्तापूर्ण है, घृणास्पद नहीं, फिर भी धर्मग्रन्थ वेदों में डयनामाइट लगाने की अनुचित और उत्तेजक बात कहते हैं!! कितना अनुचित और परस्परविरोधी वक्तव्य है उनका! वेद, धर्मशास्त्र, रामायण, महाभारत, पुराण, गीता सभी को नष्ट-भ्रष्ट करने और उनसे

नाता तोड़ने की बात कही है उन्होंने! धर्मशास्त्र धर्मजिज्ञासा, साहित्य, संस्कृति, सभ्यता, आचार व्यवहार, जीवनमूल्य सभी के आश्रय और प्रेरणा स्त्रोत होते हैं। उनको नष्ट करने का अभिप्राय है आर्य (वैदिक) संस्कृति-सभ्यता, धर्म, इतिहास, साहित्य आदि सब कुछ को नष्ट करना। क्या डॉ० अम्बेडकर यही चाहते थे? यदि डॉ० अम्बेडकर हिन्दू धर्म में रहकर पीड़ित थे और उन्हें वह छोड़ना था, तो वे उसे छोड़कर केवल 'मनुष्य' के नाते भी रह सकते थे, किन्तु धर्म के आश्रय के बिना वे नहीं रह सके। उन्होंने बौद्ध मत का आश्रय लिया और बौद्ध-शास्त्रों को प्रमाण माना, जबकि हिन्दुओं को वे धर्म और धर्मशास्त्रों का त्याग करने के लिए कहते हैं।

डॉ० अम्बेडकर और दलितवर्ग द्वारा झेली गयी पीड़ाएं अन्यायपूर्ण थीं, किन्तु किसी सम्पूर्ण समुदाय के धर्म और धर्मशास्त्रों को अपमानपूर्वक नष्ट करने की बात कहना, क्या अन्यायपूर्ण और पीड़ाजनक नहीं है? प्रतिशोध-भावना से इस प्रकार की अनुचित और आघातकारक बातें कहना बहुत ही आपत्तिजनक है। उन्होंने यह भी नहीं सोचा कि यह बात संभव भी है या नहीं?

डॉ० अम्बेडकर की उक्त सोच ठीक वैसी ही है जैसे किसी के हाथ-पैर में फोड़ा हो जाये तो उसका आप्रेशन कर उसको निकाल देने के बजाय उस आदमी को जान से ही मार दिया जाये! यहां मैं महात्मा गांधी द्वारा उस समय दिये गये उत्तर को उद्धृत करना चाहूंगा- "**जैसे कोई कुरान को अस्वीकार कर मुसलमान कैसे बना रह सकता है और बाइबल को अस्वीकार कर कोई ईसाई कैसे बना रह सकता है। (अंबेडकर वाङ्मय खंड १, पृ० ११०)** वैसे वेदों-शास्त्रों को अस्वीकार कर कोई हिन्दू कैसे हो सकता है?"

वेदों में जातिव्यवस्था का नामोनिशान तक नहीं है। फिर भी डॉ० अम्बेडकर ने वेदों की अकारण आलोचना की, उनको नष्ट करने की बात कही, उनके महत्त्व को अंगीकार नहीं किया। बौद्ध होकर भी उन्होंने ऐसा ही किया है। उन्होंने बौद्ध-शास्त्रों की और अपने गुरु की अवज्ञा की है, क्योंकि बौद्ध शास्त्रों में महात्मा बुद्ध ने वेदों और वेदज्ञों की प्रशंसा करते हुए धर्म में वेदों के महत्त्व को प्रतिपादित किया है। कुछ प्रमाण देखिए-

(अ) **"विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मम्।**
न उच्चावचं गच्छति भूरिपज्जो।" (सुत्तनिपात २९२)

अर्थात्—महात्मा बुद्ध कहते हैं—'जो विद्वान् वेदों से धर्म का ज्ञान प्राप्त करता है, वह कभी विचलित नहीं होता।'

(आ) **"विद्वा च सो वेदगू नरो इध, भवाभवे संगं इमं विसज्जा।**
सो वीतवण्हो अनिघो निरासो, अतारि सो जाति जरांति ब्रूमीति॥" (सुत्तनिपात १०६०)

अर्थात्—'वेद को जानने वाला विद्वान् इस संसार में जन्म और मृत्यु की आसक्ति का त्याग करके और इच्छा, तृष्णा तथा पाप से रहित होकर जन्म-मृत्यु से छूट जाता है।' सुतनिपात के वेदप्रशंसा विषयक अन्य श्लोक द्रष्टव्य हैं- ३२२, ४५८, ५०३, ८४६,१०५९ आदि।

डॉ० अम्बेडकर की मनु-विरोध परम्परा में डॉ० भदन्त आनन्द कौसल्यायन द्वारा 'राष्ट्रीय कर्तव्य' के नाम से किया गया मनुस्मृति-विरोध केवल 'विरोध' के लिए ही है, जो अत्यन्त सतही है। उसमें न तर्क है, न सम्यक् विश्लेषण। अपव्याख्या और अपप्रस्तुति का आश्रय लेकर अच्छे को भी बुरा सिद्ध करने का प्रयास है। उन्हें जहां इस बात पर आक्रोश है कि मनु ने नारियों की निन्दा की है, तो इस बात पर भी दुःख है कि उन्हें "पूजार्हा=सम्मानयोग्य" क्यों कहा गया? इसी को कहते हैं 'चित भी मेरी, पट भी मेरी।' उनकी स्थिति विरोधाभासी है। महात्मा गांधी के प्रशंसक हैं, किन्तु उनके निष्कर्षों को नहीं मानते। बौद्ध हैं, किन्तु बौद्ध साहित्य में वर्णित वेद-वेदज्ञ आदि के महत्त्व को स्वीकार नहीं करते। स्वयं को गर्व से अवैदिक = अहिन्दू घोषित करते रहे, किन्तु हिन्दुओं के शास्त्रों के तथाकथित उद्धार में और हिन्दुओं में पूज्य महापुरुषों मनु, राम आदि की निन्दा-आलोचना में आजीवन लगे रहे।

४. संस्कृत भाषा एवं शैली के ज्ञान का अभाव

मनु, मनुस्मृति तथा वैदिक साहित्य सम्बन्धी गम्भीर, व्यापक एवं तथ्यात्मक जानकारी न होने का एक कारण डॉ० अम्बेडकर का संस्कृत भाषा के ज्ञान का अभाव रहा है। यद्यपि उन्होंने एक गर्वोक्ति में इस कारण को अस्वीकार किया है तथापि परोक्ष शैली में उन्होंने इस वास्तविकता को स्वीकार भी कर लिया है। यह सत्य है कि वे

संस्कृत भाषा के गम्भीर ज्ञाता नहीं थे। उन्होंने प्राचीन भारतीय साहित्य एवं व्यवस्था सम्बन्धी जो कुछ पढ़ा, समझा और लिखा, वह अंग्रेजी रूपान्तरणों और समीक्षाओं के माध्यम से ही समझा है। डॉ० अम्बेडकर इस तथ्य को स्वयं स्वीकार करते हुए लिखते हैं—

(क) "यदि यह कहा जाय कि **मैं संस्कृत का पंडित नहीं तो मैं मानने को तैयार हूं।"**

"परन्तु संस्कृत का पंडित न होने से मैं इस विषय पर लिख क्यों नहीं सकता? संस्कृत का बहुत-थोड़ा अंश है जो अंग्रेजी भाषा में उपलब्ध नहीं है। इसलिए संस्कृत न जानना मुझे इस विषय पर लिखने का अनधिकारी नहीं ठहरा सकता। **अंग्रेजी अनुवादों का पन्द्रह साल अध्ययन करने के बाद** यह अधिकार मुझे अवश्य प्राप्त है।" (शूद्रों की खोज, प्राक्कथन पृ० २, समता प्रकाशन, नागपुर)

समीक्षा—आलोच्य ग्रन्थों की भाषा एवं शैली तथा परम्परा का गम्भीर ज्ञान न होने के कारण कोई भी लेखक उस भाषा की प्रकृति, शैली, अर्थपरम्परा, वक्ता का अभिप्राय, अन्तर्विरोध आदि को नहीं समझ पाता। डॉ० अम्बेडकर द्वारा उद्धृत सभी सन्दर्भ दूसरे लेखकों के हैं, अतः यह मानना पड़ेगा कि मूलतः निष्कर्ष भी उन्हीं के हैं। वे स्वयं मनुस्मृति आदि ग्रन्थों के श्लोकों पर विचार नहीं कर सके। यदि वे संस्कृत भाषा के ज्ञाता होते तो निश्चय ही स्थिति कुछ अलग होती।

संस्कृत ज्ञान के अभाव में डॉ० अम्बेडकर न तो मनु के श्लोकों के सही अर्थ का निर्णय कर सके, न परस्परविरोध का और न मनुस्मृति की प्रक्षिप्तता एवं मौलिक स्थिति का। जहां तक प्रक्षिप्तों के अस्तित्व का प्रश्न है, अब इसमें कोई मतभेद नहीं रह गया है कि उपलब्ध मनुस्मृति में मौलिक व प्रक्षिप्त, दोनों प्रकार के श्लोक प्राप्त हैं। अनेक श्लोकों में परस्परविरोध और प्रसंगविरोध आदि हैं। डॉ० अम्बेडकर के समय तक इस विषय पर शोध नहीं हुआ था, अतः उन्हें यह निर्णय उपलब्ध नहीं हुआ और संस्कृत भाषा का ज्ञान न होने से वे स्वयं इनका निर्णय कर नहीं सके। उनके जितने विरोध और आपत्तियां हैं वे या तो प्रक्षिप्त श्लोकों पर केन्द्रित हैं, या फिर अर्थभेद या अशुद्ध अर्थ पर आधारित हैं। आपत्तिपूर्ण श्लोकों अर्थात्

प्रक्षिप्तों पर आलोचना प्रस्तुत करते हुए उन्होंने इस तथ्य का उत्तर नहीं दिया कि आलोचित श्लोक का विरोधी जो श्लोक मनुस्मृति में उपलब्ध है, जो कि आपत्तिरहित, उत्तम मान्यता का वर्णन करने वाला है, उसको वे क्यों नहीं स्वीकार करते? या एक साथ दो विरोधी श्लोक एक ग्रन्थ में क्यों है? यदि वे इस तथ्य पर चिन्तन कर लेते तो उन्हें मनुस्मृति का अन्धविरोध करने का विचार ही छोड़ देना पड़ता।

डॉ० अम्बेडकर ने मनुस्मृति की मौलिक और प्रक्षिप्त स्थिति पर पृथक् से विचार नहीं किया। न मौलिक श्लोकों को पृथक् विचारा, न प्रक्षिप्तों को, उन्होंने सारी मनुस्मृति की अलोचना की है; जो केवल प्रक्षिप्तों पर आधारित है। इस प्रकार डॉ० अम्बेडकर ने अच्छे श्लोकों के साथ सारी मनुस्मृति की निन्दा कर डाली, जो ऐतिहासिक तथ्य के विपरीत मत है। यह रहस्यपूर्ण बात है कि डॉ० अम्बेडकर ने वेदों, रामायण, गीता, महाभारत, पुराण, सूत्रग्रन्थ सभी में प्रक्षेपों का अस्तित्व घोषित किया है, किन्तु मनुस्मृति में स्वीकार नहीं किया। ऐसा क्यों? स्पष्ट है कि यदि वे मनुस्मृति में भी मौलिक व प्रक्षेप के अस्तित्व को ईमानदारी से स्वीकार कर लेते तो उनका 'विरोध के लिए विरोध' का अभियान चल ही नहीं पाता। (प्रमाणों के लिए द्रष्टव्य है अध्याय संख्या छह)

५. वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति-प्रक्रिया तथा व्यावहारिकता को न समझ पाना

वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति-प्रक्रिया एवं व्यावहारिकता के वास्तविक स्वरूप को न समझना अथवा समझे हुए सही स्वरूप पर स्थिर न रहना, विरोध का एक अन्य कारण है।

समीक्षा—डॉ० अम्बेडकर ने जब-जब चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को सही समझा है, तब-तक उन्होंने उसकी प्रशंसा की है। जब ठीक नहीं समझा, तब निन्दा की है। कभी-कभी ठीक समझकर भी वे अपने मत पर स्थिर नहीं रहे। यदि स्थिर रहते तो महर्षि मनु के उग्र और अविचारित विरोध के सारे अवसर समाप्त हो जाते अर्थात् डॉ० साहब को मनु का विरोध करने का अवसर ही नहीं मिलता।

वर्णव्यवस्था को समझने में भूल तब होती है जब हम वर्ण को जाति के समान जन्म से मान लेते हैं। वर्ण जन्म से निर्धारित नहीं होता था जबकि जाति जन्म से निर्धारित होती थी और होती है। वर्ण का अभिप्राय यह था कि किसी भी कुल में उत्पन्न होने के उपरान्त व्यक्ति अपने गुण, कर्म, योग्यता के अनुसार किसी भी वर्ण का चयन करके उस वर्ण को धारण कर सकता था। यह व्यवस्था ठीक ऐसी ही थी जैसे आज किसी भी कुल का व्यक्ति किसी भी नौकरी का कार्य कर सकता है। जब डॉ० अम्बेडकर वर्ण के इस मौलिक और सही स्वरूप को त्यागकर उसको जन्म पर आधारित मान लेते हैं तब वे चातुर्वर्ण्य का विरोध करते हैं और चातुर्वर्ण्य-विधायक वेदमन्त्रों की तथा मनुस्मृति के श्लोकों की जन्माधारित व्याख्या प्रस्तुत करते हैं। यह निर्विवाद है कि वे भलीभांति जानते थे, और जैसा कि उन्होंने अनेक बार लिखा भी है, कि वैदिक चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में वर्ण गुण-कर्म-योग्यता से निर्धारित होते थे। उनके द्वारा किये गये बारंबार विरोध को पढ़कर यह संदेह होता है कि चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के सही स्वरूप की जानकारी रखते हुए भी डॉ० अम्बेडकर द्वारा जो उसका विरोध किया जाता रहा है, वह जानबूझकर और योजनाबद्ध है। शायद वे राजनीति से प्रेरित स्थिति में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के सही स्वरूप को जानबूझकर मानना नहीं चाहते थे क्योंकि फिर वे **'विरोध के लिए विरोध'** नहीं कर सकते थे। तब तर्क उन्हें विरोध के मार्ग पर नहीं बढ़ने देता। इसलिए उन्होंने वर्णव्यवस्था के सही स्वरूप को अनेक स्थलों पर प्रस्तुत करने के बावजूद चातुर्वर्ण्य व्यवस्था को जन्म से जोड़कर भ्रामक रूप में प्रस्तुत किया है और उसकी आड़ लेकर मनु, मनुस्मृति तथा आर्य (हिन्दू) शास्त्रों का खुलकर विरोध किया है। (इसके उदाहरण द्रष्टव्य हैं—'डॉ० अम्बेडकर के ग्रन्थों में परस्परविरोध' शीर्षक आगामी अध्याय आठ में)

डॉ० अम्बेडकर सहित वर्णव्यवस्था के समीक्षकों को एक भ्रान्ति यह है कि वे मुख, बाहु, जंघा, पैर से सीधे वर्णस्थ व्यक्तियों की उत्पत्ति मानते हैं जबकि उन प्रसंगों में वर्णों की आलंकारिक उत्पत्ति है, व्यक्तियों की नहीं। पहले वर्ण बने हैं फिर उनमें कर्मानुसार व्यक्ति दीक्षित हुए हैं (द्रष्टव्य - 'वर्णव्यवस्था का यथार्थ स्वरूप' शीर्षक

अध्याय तीन)। पहले व्यवस्था बनती है, पुनः व्यक्तियों पर लागू होती है। अतः पैर से शूद्रवर्ण की आलंकारिक उत्पत्ति दर्शाई है, शूद्रों की नहीं। इस सही प्रक्रिया को समझ लेने पर यह आक्रोश स्वतः समाप्त हो जाता है कि शूद्रों की उत्पत्ति पैर से क्यों कही गयी है? क्योंकि चारों वर्णों में से अयोग्यता के कारण किसी भी कुल का व्यक्ति शूद्र होकर शूद्रवर्ण में समाविष्ट हो सकता था।

संसार की सभी व्यवस्थाएं शतप्रतिशत मान्य और खरी नहीं होती। अतः कुछ कमियों के आधार पर परवर्ती जातिव्यवस्था (हिन्दू व्यवस्था) की निन्दा और अपमान करना कदापि उचित नहीं माना जा सकता। हाँ, उसमें निहित कुप्रथाओं पर प्रहार होना ही चाहिए। आज की संवैधानिक व्यवस्था, जिसका न्याय, समानता आदि का दावा है, क्या सम्पूर्ण है? अभी ही वह न जाने कितने विवादों से घिरी है। सामयिक आवश्यकता के आधार पर आरक्षण का प्रावधान किया गया है, फिर भी आज उस पर उग्र विवाद है। आज के सैकड़ों वर्ष पश्चात् जब ये परिस्थितियां विस्मृत हो जायेंगी, तब जो इस व्यवस्था का इतिहास लिखा जायेगा, शायद वह आरक्षित जातियों के लिए भी वैसा ही लिखा जायेगा, जो ब्राह्मणों के सन्दर्भ में आज प्राचीन धर्मशास्त्रों का लिखा जा रहा है।

वर्तमान संवैधानिक व्यवस्थाओं में, उच्चतम अधिकारी से लेकर निम्नतम कर्मचारी तक के लिए परीक्षाओं–उपाधियों के अनुसार नियुक्ति का प्रावधान है। कुछ स्थान मनोनयन से भरे जाते हैं। थोड़े से वर्षों में ही स्थिति यहां तक पहुंच गयी है कि महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों के मनोनयन में, सत्ता में बैठे नेताओं, अधिकारियों के सम्बन्धी या सिफारिशी ही अधिकांशतः ले लिये जाते हैं; योग्यता का पैमाना भुला दिया गया है। योग्यता की जांच के लिए साक्षात्कार आयोजित होते हैं, किन्तु तब भी हजारों नौकरियां सिफारिश और पैसे के आधार पर दी जा रही हैं। न्यायालयों द्वारा रद्द अनेक चयनसूचियां इसके सत्यापित प्रमाण हैं। राजनीतिक स्तर पर होने वाले 'राज्यपाल' आदि पदों के मनोनयन में योग्यता नाम की कोई वस्तु दिखायी नहीं पड़ती। वहां अपने–पराये का नग्न रूप है। कल्पना कीजिए, जिसकी कि संभावनाएं प्रबल दिखायी पड़ रही हैं, सैकड़ों वर्ष बाद ये

व्यवस्थाएं और अधिक विकृत होकर यदि जन्माधारित रूप ले गयीं तो क्या उसकी जिम्मेदारी डॉ० अम्बेडकर और संविधान-सभा की मानी जायेगी ? क्या उन द्वारा प्रदत्त व्यवस्था उस भावी विकृत व्यवस्था की जननी मानी—जानी जायेगी ? यदि नहीं, तो मनु को भी जाति-व्यवस्था का जनक और जिम्मेदार नहीं कहा जा सकता।

६. प्राचीन धर्मशास्त्रों एवं मान्यताओं के ज्ञान का अभाव

आर्य (हिन्दू)-शास्त्रों की मौलिक परम्पराओं और मान्यताओं को भी डॉ० अम्बेडकर भारतीय परम्परा के अनुसार नहीं समझ सके। अंग्रेजी अनुवादों पर निर्भर होने के कारण उन्होंने शास्त्रों का स्वरूप और काल वही समझा, जो पाश्चात्य लेखकों ने कपोलकल्पना से स्थापित किया था। परिणामस्वरूप डॉ० अम्बेडकर का आर्य (हिन्दू) शास्त्रों का विवेचन एकपक्षीय रहा। इस स्थिति को वे अनुभव भी करते थे। उन्होंने इस विवशता को इन शब्दों में स्वीकार किया हैं—

(क) ''हिन्दू धर्मशास्त्र का मैं अधिकारी ज्ञाता नहीं हूं।'' (जातिभेद का उच्छेद, पृ० १०१, बहुजन कल्याण प्रकाशन, लखनऊ)

(ख) ''महात्मा जी (गांधी जी) की पहली आपत्ति यह है कि मैंने जो श्लोक चुने हैं, वे अप्रमाणिक हैं। मैं यह मान सकता हूं कि मेरा इस विषय पर पूर्ण अधिकार नहीं है।'' (वही, पृ० १२०)

समीक्षा—डॉ० अम्बेडकर ने वैदिक मान्यताओं, स्थापनाओं एवं परम्पराओं को प्राचीन भारतीय मतानुसार नहीं समझा, या समझकर स्वीकार नहीं किया। उनके प्रायः सभी निष्कर्ष अंग्रेजी अनुवादों और समीक्षाओं पर निर्भर हैं। इस कारण उन द्वारा प्रस्तुत मान्यताएं गड्ड-मड्ढ हो गयी हैं। जैसे, डॉ० अम्बेडकर ने लिखा है कि मनुस्मृति का रचयिता मनु नामधारी सुमति भार्गव है जो ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुङ्ग (१८५ ईस्वी पूर्व) का समकालीन है। इससे स्पष्ट हुआ कि वे उसी की आलोचना कर रहे हैं, प्राचीनतम मनुओं की नहीं। किन्तु उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट नहीं किया। विरोध में सभी मनुओं को घसीटा है।

भारतीय प्राचीन मतानुसार 'मनुस्मृति' मूलतः मनु स्वायंभुव की रचना है, जो ब्रह्मा के पुत्र थे। उसी मनुस्मृति का उल्लेख सम्पूर्ण

प्राचीन वैदिक एवं लौकिक संस्कृत वाङ्मय में है। वही प्राचीन काल से भारतीय समाज में प्रचलित है। उस मनुस्मृति में मूलतः गुण-कर्म-योग्यता पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था विहित है। यह संभव है कि उस मनुस्मृति में प्रक्षेप के रूप में जो जातिव्यवस्था के श्लोक मिलाये हैं वे मनु सुमति भार्गव ने मिलाये हो। इस तथ्य का स्पष्टीकरण न किये जाने से प्राचीन मनु भी अनावश्यक रूप से निन्दा के शिकार हो रहे हैं।

मनु का काल मनुष्यों की सृष्टि का प्रारम्भिक काल है (देखिए आरम्भ में वंशावली)। उस समय कर्मणा वैदिक व्यवस्था ही थी। स्वयं डॉ० अम्बेडकर का भी मत है कि जन्मना जाति व्यवस्था तो महाभारत के बाद और बौद्धकाल से पूर्व प्रारम्भ हुई और ईसापूर्व की शताब्दियों में ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुङ्ग के काल में सुदृढ़ हुई। मनु के काल में जन्मना जातिव्यवस्था थी ही नहीं तो उसका मनु द्वारा वर्णन कैसे संभव है? स्पष्ट है कि मनुस्मृति में ऐसे श्लोकों का प्रक्षेप जन्मना जातिवाद के उद्‌भव के बाद हुआ है। उनका जिम्मेदार प्राचीनतम महर्षि मनु स्वायम्भुव को कैसे माना जा सकता है? इस तथ्य पर न तो पाश्चात्य लेखकों ने ईमानदारी से विचार किया और न डॉ० अम्बेडकर ने किया। यदि डॉ० अम्बेडकर ऐसा करने का अवसर पाते तो आज स्थिति भिन्न और सुखद होती। अब, डॉ० अम्बेडकर के अनुयायियों को इस तथ्य पर अवश्य ही विचार करना चाहिये कि जो आदिपुरुष एवं राजर्षि मनु जब निर्दोष एवं आरोपरहित हैं तो उनको दोषी और आरोपी कहने का अन्याय क्यों किया जाये? यदि वे विरोध करना ही चाहते हैं तो डॉ० अम्बेडकर द्वारा कथित ईसापूर्व द्वितीय शती के ब्राह्मण राजा पुष्यमित्र शुङ्गकालीन 'मनु सुमति भार्गव' का विरोध करें, जो अनुमानतः मनुस्मृति में ब्राह्मणवादी विचारधारा का प्रक्षेपकर्त्ता है, आदिपुरुष मनु का विरोध नहीं करें।

* * *